वैशेषिकसम्मत भक्ति मीमांसा

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

प्राय: सभी दर्शनों के आकर ग्रन्थों मे ज्ञानमीमांसा ओर तत्त्वमीमांसा के साथ-साथ किसी-न-किसी रूप में आचार को विवेचन भी अन्तर्निहित रहता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के सम्यक् विवेक के साथ जीवन में सन्तुलित कार्य करना ही आचार है। यही कारण है कि प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति कभी-न-कभी यह सोचने के लिए बाध्य हो जाता है कि जीवन क्या हैं? संसार क्या है? संसार से उसका संयोग या वियोग कैसे और क्यों होता है? क्या कोई ऐसी शक्ति है, जो उसका नियन्त्रण कर रही है? क्या मनुष्य जो कुछ है उसमें वह कोई परिवर्तन ला सकता है? व्यष्टि और समष्टि में क्या अन्तर या सम्बन्ध है? एक व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों या जगत् के प्रति क्या कर्तव्य है? ये और कई अन्य ऐसे प्रश्न हैं जो एक ओर रहस्यमयी पारलौकिकता को और दूसरी ओर समाज और व्यावहारिक जगत् की दृश्यमान ऐहलौकिकता को स्पर्श करते हैं। प्रकारान्तर से यह कहा जा सकता है कि जो प्रयत्न-शृंखला सार्थक और सम्यक् उद्देश्य की पूर्ति के लिए दृष्ट को अदृष्ट के साथ या दृष्ट को दृष्ट के साथ जोड़ती है, वह लौकिक क्षेत्र में आचार कहलाती है। सभी भारतीय आस्तिक दर्शनों में आचार के प्रमुख स्त्रोत वेद माने जाते हैं। वैशेष्शिकों ने आचारपक्ष पर कोई सीधा विश्लेषण प्रस्तुत नहीं किया। अत: वैशेषिक ग्रन्थों में यत्र-तत्र जो कतिपय संकेत उपलब्ध होते हैं, उनके आधार पर ही यह कहा जा सकता है कि वैशेषिकों का आचारपरक दृष्टिकोण भी वेदमूलक ही है। इस धारणा की पुष्टि महर्षि कणाद के इन कथनों से हो जाती है कि - ''लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक नि:श्रेयस तत्त्वज्ञानजन्य है, तत्त्वज्ञान धर्मजन्य है, और धर्म का प्रतिपादक होने और ईश्वरोक्त होने के कारण वेद ही धर्म का प्रमाण है।''

वैशेषिक भक्तिसंहिता के घटक

१. धर्माधर्मविवेक

वैशेषिक की आचारपरक मान्यताओं के तीन प्रमुख आधार हैं। वैशेषिकों की आचार परक विचारधारा का केन्द्रबिन्दु यह मान्यता है कि सुख का त्याग मोक्षमार्ग की एक प्रमुख इतिकर्तव्यता है। सुख भी अन्त: दु:खरूप ही है और दु:ख से छुटकारा ही मोक्ष है। वैशेषिक दर्शन के पहले चार सूत्रों से ही इस बात की पुष्टि होती है कि वैशेषिक की मान्यताओं के साथ धर्म का अनिवार्य सम्बन्ध है। गुणों की गणना में भी धर्म और अधर्म के समावेश से यह स्पष्ट होता है कि जीवात्मा धर्म और अधर्म आदि विशेष गुणों से युक्त है। अन्नंभट्ट के अनुसार विहित कर्मों से जन्य अदृष्ट धर्म और निषिद्ध कर्मों

से जन्य अदृष्ट अधर्म कहलाता है। कतिपय विद्वानों का यह कथन है कि धर्म और अधर्म शब्द सत्कर्म या असत्कर्म के नहीं, अपि तु पुण्य और पाप के बोधक हैं, जो सत्कर्म और असत्कर्म के फल हैं।

शब्द को पृथक् प्रमाण न मानते हुए भी वैशेषिकों ने धर्म के विषय में वेद को ही प्रमाण माना है। वैशेषिक की साधना-पद्धति क्या थी? इस संदर्भ में कतिपय विद्वानों का यह मत है कि वह प्रायः उन दर्शनों से मिलती-जुलती है जो आत्मसंयम या सत्त्वशुद्धि को आचार की प्रमुख विधि मानते हैं। राग-द्वेष, जिस प्रवृत्ति को जन्म देते हैं, वह दुःख और सुख का कारण बनकर फिर राग-द्वेष को जन्म देती है और इस प्रकार से एक दुश्चक्र सा चलता रहता है। उसको यम, नियम आदि रोक लें तो जीवन अपने सर्वोंगा लक्ष्य (मुक्ति) की प्राप्ति करवाने वाले मार्ग का अनुसरण कर सकता है।

वैशेषिकों की दृष्टि में सुख और दुःख एक दूसरे से इतने जुड़े हुए हैं कि दुःख से बचने के लिए सुख का भी त्याग आवश्यक है। सुख की तरह दुःख भी आत्मा का एक आगन्तुक गुण है। उसके विनाश से आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मोक्ष की स्थिति में आत्मा का दुःख-सुखसहित सभी आगन्तुक गुणों से छुटकारा हो जाता है। इस संदर्भ में यह स्मरणीय है कि महात्मा बुद्ध का उपदेश यह था कि सुख, दुःख या स्वार्थपरता से छुटकारा तब तक सम्भव नहीं है, जब तक आत्मा की नित्य सत्ता में विश्वास करना नहीं छुट जाता। बौद्धों के इस सिद्धान्त के विपरीत वैशेषिक आत्मा को नित्य मानते हैं, किन्तु उनकी यह मान्यता है कि सुख-दुःख से छुटकारा और जीवन का अन्तिम ध्येय (मोक्ष) तब तक प्राप्त नहीं होता, जब तक यह न मालूम हो जाय कि आत्मा सभी अनुभवों से परे है।

२. ईश्वर

मोक्ष का सम्बन्ध जीवात्मा से है और जीवात्मा का परमात्मा या ईश्वर से है। वैशेषिकों के अनुसार आत्मा के दो प्रकार हैं - जीवात्मा और परमात्मा। परमात्मा को ही ईश्वर कहा जाता है। वैशेषिकसूत्र में ईश्वर का उगेख नहीं है, किन्तु ''तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्''। इस सूत्र में ईश्वर की झलक मिलती है। अतः उत्तरवर्ती भाष्यकारों ने यह कहा कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि के नित्य परमाणुओं से ईश्वर सृष्टि का निर्माण ब्रह्माण्डकुलाल के रूप में कुम्भकार की तरह करता है। वह सृष्टि का निमित्त कारण है, उपादान कारण नहीं। वह मकड़ी की तरह अपने भीतर से नहीं करता, अपि तु परमाणुओं से सृष्टि की रचना करता है। परमाणु अचेतन हैं, अतः वे स्तन्त्रतया विश्व को धारण करने में असमर्थ हैं। जीवात्मा में कर्म करने की जो शक्ति रहती है, वह भी उसे ईश्वर से ही प्राप्त होती है। ईश्वर का कोई शरीर नहीं। किन्तु शरीर न होने पर भी वह इ%छा, ज्ञान और प्रयत्न इन तीनों गुणों से युक्त है। वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् तथा कर्मफल का दाता है। कार्य करने में जीव स्वतंत्र है, पर उनका फल ईश्वर के हाथ में ही है। वात्स्यायन के अनुसार विशिष्ट आत्मा ही ईश्वर है। जीवात्मा में भी यह

गुण है, पर वे अनित्य हैं जबकि ईश्वर में नित्य हैं। उदयनाचार्य ने ईश्वर की सिद्धि के लिये निम्नालिखित आठ तर्क प्रस्तुत किये हैं - (१) जगत् कार्य है, उसका कोई निमित्त कारण होना चाहिए, वह कारण ईश्वर है, (२) ईश्वर के बिना अदृष्ट परमाणुओं में गति संचार नहीं हो सकता, (३) जगत् (परमाणुओं) का धारक भी कोई होना चाहिए, वह ईश्वर है, (४) पदों में अर्थ को व्यक्त करने की शक्ति भी ईश्वर से ही आती है, (५) वेदों को देखकर उनके प्रवक्ता ईश्वर का अस्तित्व प्रमाणित होता है, (६) श्रुति ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करती है, (७) वेदवाक्य पौरुषेय हैं और वेदकर्ता पुरुषविशेष ही ईश्वर है, (८) द्वित्वादि संख्या के संदर्भ में अपेक्षाबुद्धि का आश्रय भी परिशेषानुमान से ईश्वर ही सिद्ध होता है।

३. मोक्ष

वैशेषिक दर्शन के अनुसार जीवात्मा के दु:खों का पूर्ण निरोध ही मुक्ति है। वैशेषिकों ने भी आत्मा के दो भेद माने जाते है -जीवात्मा और परमात्मा। जीवात्मा के गुण अनित्य और परमात्मा के नित्य होते हैं। अक्षपाद गौतम के अनुसार दु:खों की अत्यन्त निवृत्ति ही मोक्ष (अपवर्ग) है। जन्म का विनाश और पुनर्जन्म का न होना ही आत्यन्तिक दु:खनिवृत्ति है। प्रशस्तपाद ने यह बताया कि पूर्वशरीर का कर्म के क्षय से नाश हो जाता है और धर्माधर्म रूप कारण के न रहने से आगे सिी शरीर की उत्पत्ति नहीं होती, तो आत्मका की यही अवस्था मोक्ष कहलाती है। न्यायलीलावतीकार वगभाचार्य ने न्यायसूत्रकार गौतम के कथन को लगभग तदवत् निवृत्ति ही मोक्ष है। श्रीधर ने यह भी स्पष्ट किया कि मोक्षावस्था में आत्मा अशरीरी होता है, उस अवस्था में आत्मा को सुख और दु:ख स्पर्श नहीं करते, क्योंकि मोक्षावस्था में सुख-दु:ख का सर्वथा अभाव होता है। अहित की निवृत्ति जीवात्मा के विशेष गुणें के उ%छेद से होती है। विशेष गुणों के उ%छेद के साथ ही शरीर का भी नाश होता है। श्रीधर मोक्षावस्था में सुख की अवस्थिति मानी जायेगी तो राग का अस्तित्व भी मानना होगा और यदि राग होता तो द्वेष भी होगा ही। सूत्रकार कणाद पदार्थों के साधर्म्य-वैधर्म्य रूप तत्त्वज्ञान को नि:श्रेयस (मोक्ष) का कारण बताते हैं। श्रीधर धर्म को नि:श्रेयस का साधन मानते हैं और तत्त्वज्ञान को धर्मज्ञान का कारण। इस प्रकार तत्त्वज्ञान, परम्परा से मोक्ष का साधन है।

मोक्षज्ञान कर्म के समुगाय से होता है। कर्म तीन प्रकार के होते हैं- काम्य, नित्य और नैमित्तिक। उनमें से काम्य कर्म का त्याग आवश्यक है। नित्य-नैमित्तिक कर्मों के द्वारा प्रत्यवायों का क्षय होता है और विमल ज्ञान उत्पन्न होता है। अभ्यास द्वारा विमल ज्ञान के परिपक्व हो जाने पर व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त होता है।

दिनकरीकार ने यह मत व्यक्त किया है कि कुछ नव्य नैयायिक यह मानते हैं कि दु:खध्वंस से नहीं, अपि तु दु:ख के कारणभूत दुरित का ध्वंस होने से मुक्ति होती है। नैयायिकों के अनुसार सुख भी

प्रकार का दु:ख ही है, इसलिए इक्कीस प्रकार के दु:खों में सुख का भी परिणगन किया गया है।

वैशेषिक दर्शन के मोक्षसम्बन्धी चिन्तन का निरूपण शंकरमिश्र ने इस प्रकार किया है कि भाग से पूर्वोत्पन्न धर्म-अधर्म का क्षय हो जाता है। निवृत्तदोष व्यक्ति द्वारा धर्माधर्म का पुन: संचय न करने के कारण उसको दूसरा शरीर नहीं ग्रहण करना पड़ता। इस प्रकार पूर्व शरीर से जीवात्मा के संयोग का जो अभाव होता है, वही मुक्ति है और वही वैशेषिकों की आचारपरक क्रियाओं का अन्तिम रूप से अवाप्तव्य है।

प्राचार्यचर:,
श्री दादू आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर